

श्रीमद्भागवतम् स्कन्ध 11 अध्याय 23: अवन्ति ब्राह्मण का गीत

5 October 2026



अवन्ति का एक धनवान परन्तु कंजूस ब्राह्मण अपना सम्पूर्ण धन तथा परिवार का स्नेह खो देता है, एक परिव्राजक भिक्षु बन जाता है, और वह पावन गीत गाता है जिसे भगवान् स्वयं संजोकर रखते हैं — वह गीत जो मन को ही समस्त सुख-दुःख का मूल बताता है।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

श्रीमद्भागवतम् विज्ञम में आपका स्वागत है, जो श्रीमद्भागवत महापुराण की पावन कथाओं के माध्यम से एक भक्तिपूर्ण यात्रा है। उद्धव ने भगवान् से एक अत्यन्त मानवीय प्रश्न पूछा है: जो आत्मा को जन्म-मृत्यु से परे जानता है, वह दुष्टों के तिरस्कार तथा उपहास को कैसे सहन करे? उत्तर में, भगवान् श्रीकृष्ण उद्धव को शुष्क दर्शन नहीं, अपितु एक कथा देते हैं — अवन्ति के एक धनवान परन्तु कंजूस ब्राह्मण की, जिसने अपना धन खोया, जिसे अपने ही घर से निकाल दिया गया, और जो पृथ्वी पर भिखारी बनकर भटका, पद-पद पर उपहासित होकर भी भीतर से अविचल रहा। अन्त में उसने एक ऐसा गीत गाया जिसे कृष्ण आज भी संजोकर रखते हैं, और अब वे उसे उद्धव को, और उनके माध्यम से हमें, देते हैं।

अध्याय की जानकारी

- शास्त्र: श्रीमद्भागवत महापुराण

- स्कन्ध: 11 (एकादश स्कन्ध)
- अध्याय: 23 (त्रयोविंश प्रवचन)
- अध्याय शीर्षक: अवन्ति के ब्राह्मण का गीत
- प्रधान वक्ता: श्रीकृष्ण, उद्धव को उपदेश देते हुए; उनकी कथा के भीतर, अवन्ति का सहनशील ब्राह्मण; समस्त सुकदेव गोस्वामी द्वारा राजा परीक्षित को कहा गया
- प्रधान श्रोता: उद्धव; तथा राजा परीक्षित
- मुख्य स्थान: द्वारका, भगवान् के उद्धव के साथ संवाद में; कथा के भीतर, अवन्ति तथा पृथ्वी के नगर-ग्राम
- केन्द्रीय विषय: विद्वेष के बिना संसार की कठोरता सहन करना, कंजूसी तथा धन-मोह से उत्पन्न विनाश, तथा मन को समस्त सुख-दुःख के वास्तविक मूल के रूप में जानना
- प्रधान श्लोक-सीमा: स्कन्ध 11, अध्याय 23, श्लोक 1-61
- मूल संस्करण: गीता प्रेस श्रीमद्भागवत महापुराण

पिछले अध्याय का सन्दर्भ

अध्याय 22 में, भगवान् ने शरीर की नौ अवस्थाओं का वर्णन किया, और उद्धव को सिखाया कि शरीर का द्रष्टा सदा उससे पृथक्, जन्म-मृत्यु से अछूता है। तब उद्धव ने पूछा कि ऐसा ज्ञाता दुष्टों के तिरस्कार तथा कठोरता को कैसे सहन करे, क्योंकि ज्ञानी जन भी इसे सहना कठिन पाते हैं। यह अध्याय भगवान् का वही उत्तर है।

जब कठोर वचन बाण से भी अधिक गहरे घाव करते हैं

भगवान् ने कोमलता से आरम्भ किया: कोई भी आत्मा, चाहे कितनी भी पुण्यात्मा हो, दुष्ट जन के कठोर वचनों से विचलित हुए बिना शायद ही रह सकती है।

न तथा तप्यते विद्धः पुमान् बाणैस्तु मर्मगैः ।

यथा तुदन्ति मर्मस्था ह्यसतां परुषेषवः ॥ ३ ॥

na tathā tapyate viddhaḥ pumān bāṇais tu marma-gaiḥ yathā tudanti marma-sthā hy asatām paruşeṣavaḥ

अर्थ: वह मनुष्य जो मर्मस्थल में बाण लगने से व्यथित होता है, उतना दुःखी नहीं होता जितना दुष्टों के बाण-सम कठोर वचनों से होता है, जो हृदय में प्रवेश कर उसे दीर्घकाल तक पीड़ित करते हैं। (स्कन्ध 11, अध्याय 23, श्लोक 3)

इस कारण, विद्वान् जन एक परम पावन कथा सुनाते हैं — एक भिक्षु की, जिसे दुष्टों ने अनेक प्रकार से अपमानित किया, परन्तु जो पूर्ण समता में रहा, यह मानते हुए कि यह सब उसके अपने पूर्वकृत कर्मों का परिपक्व फल है।

अवान्ते का धनवान परन्तु सुखहीन ब्राह्मण

अवन्ति में एक ब्राह्मण रहता था, धन में समृद्ध परन्तु जो वास्तव में मूल्यवान है उसमें रिक्त — कंजूस, कामी, लोभी तथा क्रोधी, कृषि-व्यापार से जीवनयापन करता हुआ। न कोई सम्बन्धी, न अतिथि उससे कभी मधुर वचन पाता; उसके घर में न भक्ति थी, न संस्कार; और अपने धन की रक्षा में इतना लीन था कि अपने ही शरीर को भी सुख से वंचित रखता। उसकी पत्नी, पुत्र, पुत्रियाँ तथा सेवक, उसकी कठोरता से क्षुब्ध होकर, अन्ततः उसका अमंगल ही चाहने लगे।



अवन्ति का ब्राह्मण अपने धन को यक्ष की भाँति रखता है, देवों, अतिथियों तथा अपने ही कुल को ठुकराते हुए, जबकि उसका परिवार शोक में देखता रहता है (श्लोक 6-9)।

प्रत्येक घर पर पाँच अधिकारी — देवता, पितर, क्षुद्र प्राणी, द्वार पर आया अतिथि, तथा ऋषि — उस पर क्रोधित हुए, क्योंकि वह अपनी सम्पत्ति को यक्ष की भाँति रखता था और इनमें से किसी को कुछ न देता था। उसका पुण्य-भण्डार इस प्रकार क्षीण हो गया, और उसका धन भी अपने ही विनाश को प्राप्त हुआ: उसके सम्बन्धियों ने एक भाग ले लिया, चोरों ने दूसरा, तथा अग्नि, समय, राजा और दुर्भाग्य ने शेष निगल लिया। सब कुछ से रिक्त होकर, अपने ही लोगों द्वारा उपेक्षित होकर, वह ब्राह्मण एक ऐसे शोक में डूब गया जिसे वह सम्हाल न सका, उसका कण्ठ अश्रुओं से अवरुद्ध हो गया।

धन, समस्त पापों का आश्रय

अपने शोक में एकाकी, ब्राह्मण ने अपना सम्पूर्ण जीवन स्पष्ट देखा, और विलाप किया। कैसा दुर्भाग्य, उसने कहा, कि यह शरीर उस धन के लिए क्षीण हुआ जिसने न धर्म की, न सच्चे सुख की सेवा की! कंजूस का धन उसे कभी सुख नहीं देता; जीवन में पीड़ा देता है, मृत्यु में नरक की ओर ले जाता है। तनिक भी लोभ मनुष्य के उत्तम गुणों को वैसे ही धूमिल करता है जैसे कुष्ठ एक सुन्दर शरीर को। धन का अर्जन, रक्षण, व्यय, नाश — प्रत्येक केवल श्रम तथा शोक लाता है; और धन से ही पन्द्रह दोष उत्पन्न होते हैं, चोरी तथा हिंसा से लेकर अभिमान तथा घृत तक, अतः मुक्ति चाहने वाले को इसके नाम से भी दूर भागना चाहिए। एक समय प्रेम से बँधे सम्बन्धी भी एक मुद्रा के लिए क्षण भर में शत्रु बन जाते हैं; और जो दुर्लभ मनुष्य तथा ब्राह्मण-जन्म पाकर उसे धन के पीछे व्यर्थ करता है, वह केवल विनाश को प्राप्त होता है।

स्वर्गापवर्गयोर्द्वारं प्राप्य लोकमिमं पुमान् ।
द्रविणे कोऽनुषज्जेत मर्त्योऽनर्थस्य धामनि ॥ २३ ॥

svargāpavargayor dvāraṁ prāpya lokam imaṁ puṁān draviṇe ko 'nuṣajjeta martyo 'narthasya dhāmani

अर्थ: यह मनुष्य-शरीर, जो स्वर्ग तथा मुक्ति का द्वार है, पाकर भी कौन मनुष्य धन में, जो समस्त अनर्थ का घर है, आसक्त रहेगा? (स्कन्ध 11, अध्याय 23, श्लोक 23)

जो अपना धन यक्ष की भाँति रखता है, न देवों, न कुल, न स्वयं को प्रसन्न करता, वह केवल अपने पतन को शीघ्र करता है। मेरा भाग्य, आयु तथा बल — जिनसे ज्ञानी जन परम कल्याण प्राप्त करते हैं — मैंने धन के पीछे व्यर्थ कर दिया। अब, वृद्ध होकर, मैं क्या कर सकता हूँ?

विषादः भवसागर पार करने की नौका

उसने सोचा कि यह व्यर्थ भूख उसे बार-बार क्यों प्रेरित करती रही, और निष्कर्ष निकाला कि कोई अदृश्य शक्ति सम्पूर्ण संसार को मोहित कर रखती है। तब उसका शोक कृपा में परिणत हो गया।

नूनं मे भगवांस्तुष्टः सर्वदेवमयो हरिः ।
येन नीतो दशमेतां निर्वेदश्चात्मनः प्लवः ॥ २८ ॥

nūnaṁ me bhagavāṁs tuṣṭaḥ sarva-deva-mayo hariḥ yena nīto daśāṁ etāṁ nirvedaś cātmanaḥ plavaḥ

अर्थ: निश्चय ही समस्त देवस्वरूप श्री हरि मुझ पर प्रसन्न हैं, क्योंकि उन्होंने ही मुझे इस दशा में लाया है; और यह विषाद ही मेरे लिए संसार-सागर पार करने की नौका बनेगा। (स्कन्ध 11, अध्याय 23, श्लोक 28)

अपने सच्चे कल्याण के प्रति जागकर, उसने निश्चय किया कि शेष दिन सरल तपस्या द्वारा इस शरीर को क्षीण करते हुए बिताएगा, यह विश्वास करते हुए कि तीनों लोकों के देवता उस पर कृपा करेंगे — यह स्मरण करते हुए कि राजा खट्वांग ने एक क्षण में विष्णुलोक को प्राप्त किया था।



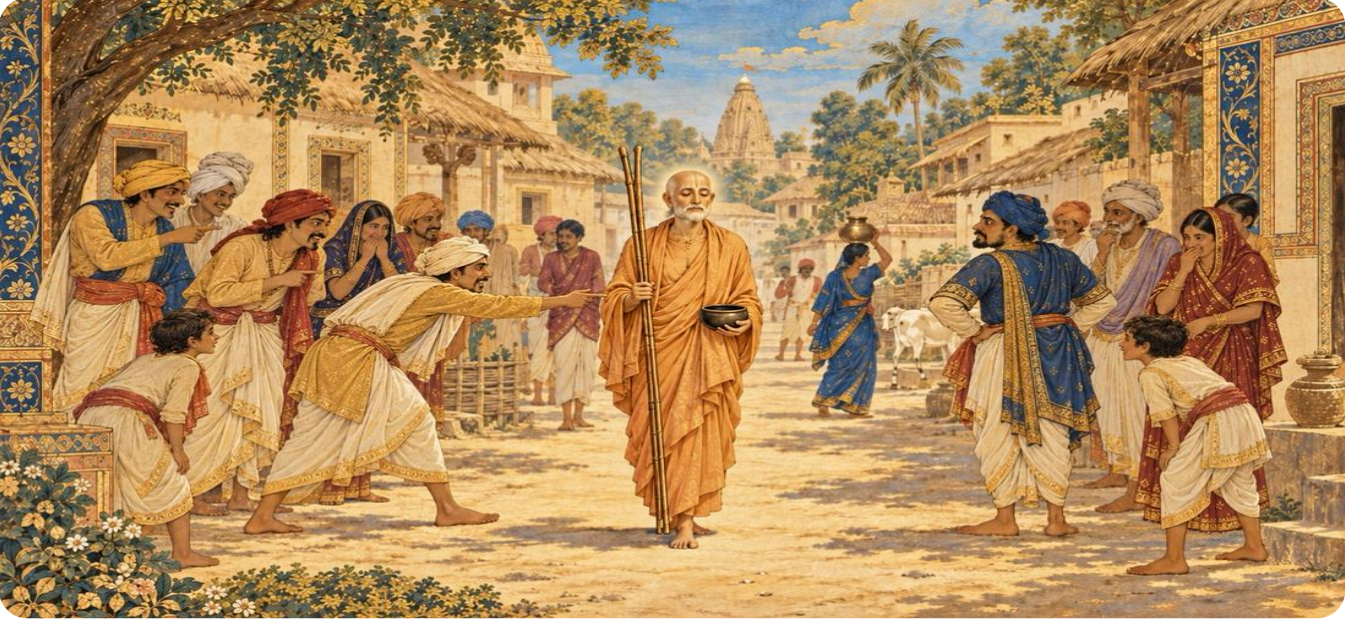
सम्बन्धियों, चोरों तथा दुर्भाग्य द्वारा बिखरा हुआ उसका धन देखकर, ब्राह्मण अपने रिक्त भण्डार के समक्ष बैठता है और जागता है कि उसका विषाद ही उस पर एक कृपा बनकर आया है (श्लोक 28)।

शान्त भिक्षु, तिरस्कृत परन्तु अविचलित

इस प्रकार निश्चय करके, ब्राह्मण ने हृदय की अहंकार-ममता की ग्रन्थियाँ खोल दीं, और एक शान्त भिक्षु बन गया, मन-इन्द्रियों पर संयम रखते हुए, अनासक्त होकर केवल भिक्षा के लिए नगर-ग्रामों में भटकता हुआ।

परन्तु दुष्ट जन, इस मलिन, वृद्ध तपस्वी को देखकर, उसे अनेक प्रकार से तिरस्कृत करते, यद्यपि वह सदा मर्यादा में रहा। किसी ने उसका त्रिदण्ड छीना, किसी ने पात्र, आसन, रुद्राक्ष-माला तथा गुदड़ी — लौटाकर फिर छीन लेते, भिक्षा का भोजन करते समय भी छीन लेते। नीचतम लोग उस पर थूकते, मौन होने पर भी बोलने के लिए विवश करते तथा न बोलने पर पीटते; कुछ उसे चोर कहते, कुछ रस्सी से बाँध देते, और कुछ उसे पाखण्डी कहकर उपहास करते, मानो धन खो जाने पर ही उसने यह वेश धारण किया हो।

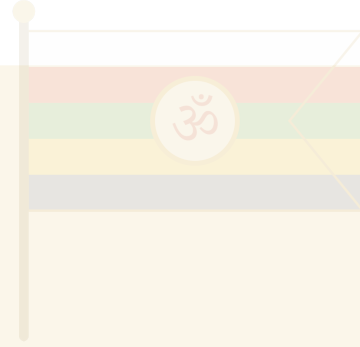
जो कुछ उस पर आया — प्राणियों से, प्रारब्ध से, या अपने शरीर से — ब्राह्मण ने उसे अपने पूर्वकृत कर्मों के फल रूप में स्वीकार किया, और विचलित नहीं हुआ। उस स्थिरता में उसने यह गीत गाया।



उपहासित होकर तथा अपना भिक्षा-पात्र भी छिन जाने पर, वह परिव्राजक भिक्षु शान्त रहता है, हर अपमान को अपने ही पूर्वकृत कर्मों के फल के रूप में सहते हुए (श्लोक 33-41)।

भिक्षु का गीत — मन ही एकमात्र कारण है

नायं जनो मे सुखदुःखहेतु-
न देवतात्मा ग्रहकर्मकालाः ।
मनः परं कारणमामनन्ति
संसारचक्रं परिवर्तयेद् यत् ॥ ४२ ॥



*nāyaṁ jano me sukha-duḥkha-hetur na devatātmā graha-karma-kālāḥ manaḥ param kārṇam
āmananti saṁsāra-cakram parivartayed yat*

अर्थ: न ये लोग, न कोई देवता, न मेरा अपना स्वरूप, न ग्रह, न कर्म, न काल ही मेरे सुख-दुःख का कारण हैं। विद्वान् जन मन को ही वास्तविक कारण बताते हैं — वही मन जो संसार-चक्र को घुमाता है। (स्कन्ध 11, अध्याय 23, श्लोक 42)

वह शक्तिशाली मन ही, उसने गाया, तीनों गुणों को उत्पन्न करता है, और उनसे शुद्ध, मलिन तथा मिश्रित कर्म, और उन्हीं से उन्हीं के अनुरूप गतियाँ प्राप्त होती हैं (श्लोक 43)। भगवान् इस मन के समीप अनासक्त साक्षी के रूप में रहते हैं; परन्तु जो आत्मा मन को ही अपना स्वरूप मानकर उसके द्वारा गुणों का भोग करती है, वह बँध जाती है। दान, स्वधर्म, व्रत, स्वाध्याय — सब कुछ मन के निग्रह में ही अपनी पूर्णता पाते हैं, क्योंकि मन का वश में होना ही परम योग है।

समाहितं यस्य मनः प्रशान्तं
दानादिभिः किं वद तस्य कृत्यम् ।
असंयतं यस्य मनो विनश्यद्
दानादिभिश्चेदपरं किमेभिः ॥ ४६ ॥

*samāhitam yasya manaḥ praśāntam dānādibhiḥ kiṁ vada tasya kṛtyam asaṁyataṁ yasya mano
vinaśyad dānādibhiḥ ced aparaṁ kim ebhiḥ*

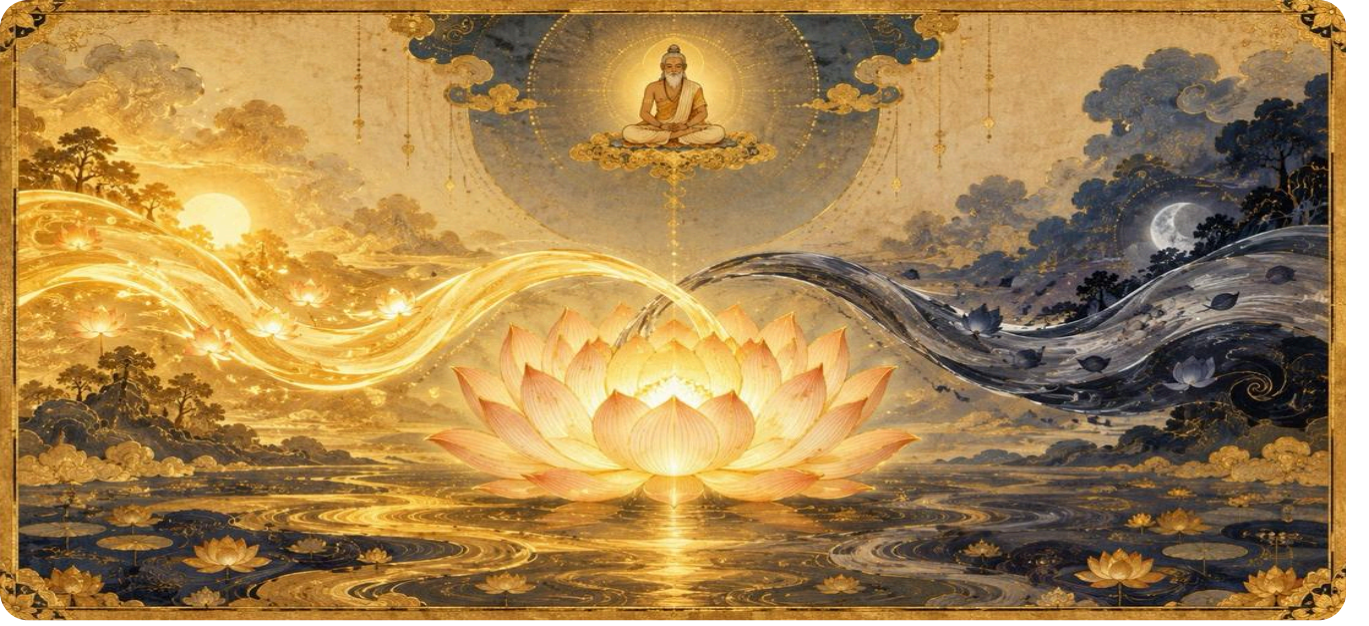
अर्थ: बताओ, जिसका मन शान्त तथा समाहित है, उसे दान आदि से क्या प्रयोजन है? और जिसका मन असंयत तथा विनष्ट हो रहा है, उसके लिए दान आदि से और क्या सिद्ध होगा? (स्कन्ध 11, अध्याय 23, श्लोक 46)

न अन्य, न देवता, न ग्रह, न कर्म, न काल

ब्राह्मण ने तब, एक-एक करके, उन सबकी ओर मुड़ा जिन्हें संसार अपने दुःख का कारण मानता है। इन्द्रियाँ तथा उन पर अधिष्ठित देवता भी मन के वश में रहते हैं, परन्तु मन किसी के वश में नहीं रहता — वह इतना दुर्जय है कि जो उसे वश में कर लेता है, वह देवों द्वारा भी पूज्य हो जाता है। जो इस भीतरी शत्रु को जीत नहीं सकते, वे बाहर मुड़कर अन्य मनुष्यों को मित्र-शत्रु मानने लगते हैं; और इस शरीर को, जो मन की ही रचना है, अपना स्वरूप मानकर अनन्त अन्धकार में भटकते रहते हैं।

यदि कोई अन्य व्यक्ति सुख-दुःख का कारण माना जाए, उसने तर्क किया, तो आत्मा का इसमें क्या दोष, जो न देती न भोगती है — जैसे अपनी ही जिह्वा दाँत से कट जाने पर किस दाँत पर क्रोध करे? यदि देवता को कारण माना जाए, तो वह भी एक अंग द्वारा दूसरे पर आघात के समान है। यदि आत्मा स्वयं कारण हो, तो दोष देने योग्य अन्य कोई है ही नहीं। यदि ग्रहों को कारण माना जाए, वे केवल जन्म-बद्ध शरीर को प्रभावित करते हैं, अजन्मी आत्मा को नहीं। यदि कर्म को कारण माना जाए, शरीर अचेतन है और आत्मा शुद्ध चैतन्य, अतः कर्म का कोई आधार नहीं रहता। और यदि काल को कारण माना जाए, आत्मा ब्रह्म का अंश होने से काल के ही समान है, और जैसे अग्नि स्वयं को नहीं जला सकती, वैसे ही आत्मा को काल कभी पीड़ित नहीं कर सकता।

न किसी के द्वारा, न कहीं, न कभी, उसने गाया, प्रकृति से परे वह आत्मा सुख-दुःख के द्वन्द्वों से छू सकती है, यद्यपि अहंकार ही उन्हें भोगता प्रतीत होता है; और जो इस सत्य के प्रति जागता है, वह किसी प्राणी से भय नहीं पाता। महान् ऋषियों के इस प्राचीन सत्य को अपनाकर, मैं इस अन्धकार को केवल श्रीकृष्ण के चरणों की सेवा से पार करूँगा।



अपने गीत में, भिक्षु प्रकट करता है कि न लोग, न देवता, न ग्रह, अपितु मन ही समस्त सुख-दुःख का वास्तविक कारण है (श्लोक 42)।

गीत का समापन, और उद्धव के लिए भगवान् का वचन

भगवान् ने कथा को समापन तक पहुँचाया। धन खोकर भी तपस्वी का विषाद दूर हो गया था; दुष्टों द्वारा निरन्तर तिरस्कृत होकर भी वह धर्म-पथ से विचलित नहीं हुआ, और इसी स्थिरता में उसने यह गीत गाया। कोई अन्य, भगवान् ने पुष्टि की, देहधारी आत्मा को सुख-दुःख नहीं देता — मित्र, शत्रु, यह सम्पूर्ण संसार, अज्ञान से उत्पन्न मन की माया है।

“अतः, प्रिय उद्धव,” भगवान् ने कहा, “अपनी बुद्धि मुझ पर स्थिर करो, और सब उपायों से मन को वश में करो — यही योग की परम सिद्धि है।”

य एतां भिक्षुणा गीतां ब्रह्मनिष्ठां समाहितः ।

धारयञ्छ्रावयञ्छृण्वन्द्वन्द्वैर्नैवाभिभूयते ॥ ६१ ॥

ya etāṁ bhikṣuṇā gītāṁ brahma-niṣṭhāṁ samāhitaḥ dhārayaṇ chrāvayaṇ chṛṇvan dvandvair naivābhibhūyate

अर्थ: जो कोई, समाहित मन से, इस भिक्षु द्वारा गाए इस ब्रह्मनिष्ठ गीत को धारण करता है, दूसरों को सुनाता है, या स्वयं सुनता है, वह द्वन्द्वों से फिर कभी अभिभूत नहीं होता। (स्कन्ध 11, अध्याय 23, श्लोक 61)



भिक्षु का गीत सुनाकर, भगवान् कृष्ण उद्धव की ओर मुड़ते हैं और उन्हें हर उपाय से मन को वश में करने, तथा भगवान् पर ही स्थिर रहने का आह्वान करते हैं (श्लोक 60)।

इस अध्याय की प्रमुख शिक्षाएँ

1. कठोर वचन किसी भी शस्त्र से अधिक गहरा घाव करते हैं। शरीर का आघात हृदय में बसे कठोर वचन के बाण से शीघ्र भर जाता है (श्लोक 3)।
2. कंजूसी उन्हीं सम्बन्धों को क्षीण करती है जिन्हें उसे पोषित करना चाहिए। धन को यक्ष की भाँति रखना, देवों, अतिथियों तथा कुल में से किसी का सम्मान न करना, मनुष्य को दोनों लोकों से वंचित करता है (श्लोक 6-11)।
3. धर्मरहित धन समस्त पापों का मूल बन जाता है। उसका अर्जन, रक्षण, व्यय तथा नाश केवल शोक लाता है, और उससे पन्द्रह दोष उत्पन्न होते हैं (श्लोक 16-24)।
4. विनाश भी भगवान् की छिपी कृपा हो सकता है। ब्राह्मण का विषाद उसके लिए संसार-सागर पार करने की नौका बन जाता है (श्लोक 28)।
5. अपने ही पूर्वकृत कर्मों से उत्पन्न तिरस्कार सहन करना चाहिए, द्वेष नहीं। सहनशील भिक्षु हर अपमान को अपने ही कर्म के फल के रूप में स्वीकार करता है (श्लोक 33-41)।
6. मन ही सुख-दुःख का वास्तविक कारण है। न लोग, न देवता, न भाग्य, न कर्म, न काल — केवल चंचल मन ही संसार-चक्र को घुमाता है (श्लोक 42-43)।
7. भगवान् पर स्थिर होकर मन को वश में करना ही परम योग है। दान, व्रत तथा विद्या मन के नियन्त्रण के बिना निष्फल रहते हैं (श्लोक 46, 60)।

एक भाक्तेपूर्ण चिन्तन

इस ब्राह्मण की कथा में गहरी सान्त्वना है, क्योंकि वह हमें परिस्थितियों के पीछे छिपने नहीं देती। उसके पास अपने सम्बन्धियों, चोरों, उपहास करती भीड़, यहाँ तक कि उपेक्षित देवों को दोष देने का पूरा कारण था — फिर भी उसका गीत इनमें से किसी को भी दोष नहीं देता। वह भीतर की ओर दीप जलाता है और पाता है कि मन ही सदा उसके दुःख का, जैसे कभी उसकी कंजूस प्रसन्नता का भी, निर्माता था। यह निराशा का नहीं, मुक्ति का सन्देश है: यदि मन ही बाँधता है, तो भगवान् को समर्पित वही मन मुक्त भी कर सकता है। उसकी जागृति सुख से नहीं, हानि से आती है — जब कुछ नहीं बचता, तभी वह उस आत्मा को पाता है जिसे कोई अपमान छू नहीं सका। कृष्ण उद्धव से, और हम सबसे, इस गीत को हृदय में धारण करने का आह्वान करते हैं।

एक दैनिक भक्ति-अभ्यास

आज, जब किसी का वचन आपको पीड़ा दे, रुकिए, और पूछिए: क्या सचमुच यह व्यक्ति मेरी पीड़ा का कारण है, या मेरा ही मन? अवन्ति के उस सहनशील भिक्षु का स्मरण कीजिए, और उस क्षण भगवान् को समर्पित करते हुए उनके नाम का जप करें: “ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।” इस विराम में उसके गीत की वही शिक्षा निहित है — मन को दोष से हटाकर भगवान् के स्मरण में विश्राम देना।

उपसंहार

एकादश स्कन्ध का त्रयोविंश प्रवचन, संसार की कठोरता सहने के उद्धव के प्रश्न का उत्तर, अवन्ति के ब्राह्मण की कथा से देता है। धनवान परन्तु कंजूस, उसने धन खोया, घर से निकाला गया, और एक परिव्राजक भिक्षु बन गया, पद-पद पर उपहासित होकर भी अविचलित, क्योंकि उसने सब कुछ शान्त स्वीकृति से सहा। उस स्थिरता में उसने एक ऐसा गीत गाया जो आज भी जीवित है: न लोग, न देवता, न ग्रह, न कर्म, न काल, केवल मन ही समस्त सुख-दुःख का कारण है, और भगवान् पर स्थिर मन को वश में करना ही योग की परम सिद्धि है। जो इस गीत को सुनता या स्मरण करता है, कृष्ण वचन देते हैं, वह जीवन के द्वन्द्वों से फिर कभी अभिभूत नहीं होता। हम सब भी, इस ब्राह्मण की भाँति, भीतर के सच्चे कारण को खोजना सीखें।

श्रीमद्भागवतम् की दिव्य वाणी हमारे हृदयों में शुद्ध भक्ति जगाए।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

जय श्री माधव।

सन्दर्भ तथा आभार

- मूल संस्करण: गीता प्रेस, श्रीमद्भागवत महापुराण (अंग्रेज़ी, सम्पूर्ण), एकादश स्कन्ध, त्रयोविंश प्रवचन, पृष्ठ 622–630।
- शृंखला: श्रीमद्भागवतम् विज़डम • बिस्वा सनातन धर्म सेवा ट्रस्ट।
- पण्डित डॉ. श्री काशीनाथ मिश्र के आध्यात्मिक मार्गदर्शन तथा अनुशंसा के अनुसार प्रस्तुत।

यह लेखक के अपने शब्दों में एक मौलिक, श्रद्धापूर्ण पुनर्कथन है, जिसमें संक्षिप्त उद्धृत श्लोक देवनागरी तथा लिप्यन्तरण में दिए गए हैं और उनके अर्थ सारांश रूप में हैं। यह किसी एक प्रकाशक के निरन्तर अनुवाद या टीका का पुनरुत्पादन नहीं है। किसी प्रकाशक से किसी सम्बन्ध या समर्थन का दावा नहीं किया गया है।

॥ हरि ॐ तत्सत् ॥

जय श्री माधव

ऑनलाइन पढ़ें: kalkiabatara.org/hi/blog-srimad-bhagavatam-skandh-11-adhyay-23-avanti-brahman-ka-geet-hi.html

श्रीमद्भागवतम् विज्ञम • कल्कि अवतार इंटरनेशनल • बिस्व सनातन धर्म सेवा ट्रस्ट

